भारत में नृजातीयता एवं धर्म
[ETHNICITY AND RELIGION IN INDIA]

यद्यपि भारत में प्रजातीय संघर्ष की कोई विशेष समस्या विद्यमान नहीं है, तथापि प्रजातीय विविधता से भारत में पाई जाने वाली नृजातीय विविधता का पता चलता है। **सर हर्बर्ट रिजले** (Sir Herbert Risley) ने भारत को प्रजातियों का अजायबघर कहा है। हमें इतिहास बताता है कि समय-समय पर देश में विभिन्न प्रजातियों का आगमन होता रहा है। इसीलिए आज भारत में संसार की सभी प्रमुख प्रजातियों के लोग यहाँ निवास करते हैं और वे आपस में इस प्रकार से मिल-जुल गए हैं कि किसी भी प्रजाति के लिए अपनी विशेषताएँ पृथक् रख पाना सम्भव नहीं रह पाया है। वास्तव में भारत में प्रजातियों का आगमन प्रागैतिहासिक समय से ही रहा है तथा इसके लिए भौगोलिक कारक सबसे अधिक उत्तरदायी रहा है। एक विशाल एवं वैभव सम्पन्न उपमहाद्वीप होने के नाते यहाँ पर्याप्त मात्रा में सभी वस्तुएँ उपलब्ध रही हैं जिसके कारण विदेशी लोग सदैव हमारे देश में रुचि लेते रहे हैं। विभिन्न प्रजातीय विशेषताओं वाले व्यक्ति बाहरी देशों से हमारे देश में आए तथा मूल प्रजातियों के लोगों को परास्त करके यहीं पर स्थायी रूप से रहने लगे। इसीलिए आज भारत प्रजातियों का अजायबघर कहा जाने लगा है।

प्रजाति एक जैविक अवधारणा है। यह मानवों के उस समूह को प्रकट करती है जिनमें शारीरिक व मानसिक लक्षण समान होते हैं तथा ये लक्षण उन्हें पैतृकता के आधार पर प्राप्त होते हैं। शरीर के रंग, खोपड़ी और नासिका की बनावट व अन्य अंगों की बनावट के आधार पर विभिन्न प्रजाति समूहों को देखते ही पहचाना जा सकता है। प्रजातीय दृष्टि से भी भारतीय समाज अनेक वर्गों में विभक्त हो गया है। भारतवर्ष में संसार की सभी प्रमुख प्रजातियों की विशेषताओं वाले लोग पाए जाते हैं। **रिजले** (Risley) के अनुसार भारतीय प्रायद्वीप में वर्तमान में सात प्रमुख प्रजातियाँ निवास करती हैं जिनमें शारीरिक दृष्टि से अन्तर पाया जाता है। ये प्रजातियाँ हैं—द्रावेडियन, इण्डो-आर्यन, मंगोलॉयड, इण्डो-द्रावेडियन, मंगोल-द्रावेडियन, सीरियन एवं टर्की-ईरानियन। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आदिकाल से ही भारत विभिन्न प्रजातियों का निवास स्थल रहा है। तभी से सभी का अपना अलग-अलग अस्तित्व भी रहा है। शारीरिक दृष्टि से विभिन्न प्रजातियाँ परस्पर एक-दूसरे से अलग-अलग रही हैं, परन्तु सभी लोग एक-दूसरे का अस्तित्व मानते रहे हैं। परन्तु अमेरिका आदि की तरह यहाँ कभी भी रंगभेद पर आधारित प्रजातीय संघर्ष देखने को नहीं मिलता है।

यद्यपि यह सच है कि आज प्रजातिवाद की समस्या भारत के सामने नहीं है परन्तु प्राचीन समय से लेकर आज तक मनुष्य का रंग अर्थात् वर्ण एक सामाजिक महत्त्व का विषय रहा है। वैदिक काल में दास, दस्यु, असुर, राक्षस सभी काले वर्ण के थे जबकि देवता, आर्य, श्रेष्ठजन सभी गौर वर्ण के थे। आज भी वैवाहिक विज्ञापनों में गौर वर्ण वधू की माँग की जाती है। गोरा रंग सौन्दर्य, शान्ति एवं पवित्रता का प्रतीक है।

प्रजाति का अर्थ एवं परिभाषाएँ

प्रजाति जैविक अवधारणा है जिसका प्रयोग सामान्यत: उस वर्ग के लिए किया जाता है जिसके अन्दर सामान्य गुण हैं अथवा कुछ गुणों द्वारा शारीरिक लक्षणों में समानता पाई जाती है। प्रमुख विद्वानों ने प्रजाति की परिभाषा निम्न प्रकार से की है—

(1) होबेल (Hoebel) के अनुसार—"प्रजाति एक प्राणिशास्त्रीय अवधारणा है। यह वह समूह है जो कि शारीरिक विशेषताओं का विशिष्ट योग धारण करता है।"

(2) रेमण्ड फिर्थ (Raymond Firth) के अनुसार—"प्रजाति व्यक्तियों का वह समूह है जिसके कुछ वंशानुक्रमण द्वारा निर्धारित सामान्य लक्षण हैं।"

(3) बेनेडिक्ट (Benedict) के अनुसार—"प्रजाति पैतृकता द्वारा प्राप्त लक्षणों पर आधारित एक वर्गीकरण है।"

(4) क्रोबर (Kroeber) के अनुसार—"प्रजाति एक प्रमाणित प्राणिशास्त्रीय अवधारणा है। यह वह समूह है जो कि वंशानुक्रमण, नस्ल या प्रजातीय गुणों या उपजातियों के द्वारा जुड़ा है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि प्रजाति व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसे आनुवंशिक शारीरिक लक्षणों के आधार पर पहचाना जा सकता है।

प्रजाति की विशेषताएँ

विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर प्रजाति की अग्रलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

(1) प्रजाति का अर्थ जन-समूह से होता है। अत: इसमें पशुओं की नस्लों को सम्मिलित नहीं किया जाता है।

(2) इस मानव समूह से तात्पर्य कुछ व्यक्तियों से नहीं है वरन् प्रजाति में मनुष्यों का बृहत् संख्या में होना अनिवार्य है।

(3) इस मानव समूह में एक-समान शारीरिक लक्षणों का होना अनिवार्य है। ये लक्षण वंशानुक्रमण के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। शारीरिक लक्षणों के आधार पर इन्हें दूसरी प्रजातियों से पृथक् किया जाता है।

(4) प्रजातीय विशेषताएँ प्रजातीय शुद्धता की स्थिति में अपेक्षाकृत स्थायी होती हैं अर्थात् भौगोलिक पर्यावरण के बदलने से भी किसी प्रजाति के मूल शारीरिक लक्षण नहीं बदलते हैं।

भारत की प्रमुख प्रजातियाँ

भारत में अनेक प्रजातियों के लोग निवास करते हैं। सर्वप्रथम **रिजले** ने भारत में प्रजातीय तत्त्वों का अध्ययन किया तथा बाद में हट्टन, गुहा, मजूमदार, सरकार इत्यादि विद्वानों ने भारत में पाई जाने वाली प्रजातियों के अध्ययन में विशेष रुचि दिखाई। भारत में कितनी प्रजातियाँ पाई जाती हैं, इसके बारे में विद्वानों में सहमति नहीं है। प्रमुख विद्वानों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है—

(अ) रिजले का वर्गीकरण—रिजले ने भारतीय जनसंख्या में निम्नलिखित प्रजातियों के तत्त्वों का उल्लेख किया है—

(1) द्रावेडियन—यह प्रजाति भारत की सबसे प्राचीन प्रजाति मानी जाती है। यद्यपि यह प्रजाति अब स्वतन्त्र रूप में तो विद्यमान नहीं है परन्तु इसके कुछ लक्षण कहीं-कहीं पर देखे जा सकते हैं। इस प्रजाति के लोग अधिकतर मद्रास, हैदराबाद, मध्य प्रदेश तथा नागपुर में पाए जाते हैं। इस प्रजाति के लोगों के बाल अर्द्ध-गोलाकार लटों में विभजित ऊनी से होते हैं। इनके सिर चौड़े, होंठ मोटे, नाक चौड़ी तथा गहरे काले रंग की त्वचा होती है।

(2) मंगोलॉयड—इस प्रजाति के लोग अधिकतर हिमालय के मैदानों, असम तथा नेफा में पाए जाते हैं। मंगोलॉयड प्रजाति के प्रमुख लक्षणों में छोटी नाक, मोटे होंठ, लम्बे एवं चौड़े सिर, चपटा चेहरा, पीले या भूरे रंग की त्वचा आदि हैं।

(3) मंगोल-द्रावेडियन—इस प्रजाति के लोग अधिकतर बंगाल तथा उड़ीसा में पाए जाते हैं।

(4) आर्यो-द्रावेडियन—उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा बिहार में इस प्रजाति के लोग देखे जा सकते हैं।

(5) साइथो-द्रावेडियन—इस प्रजाति के लोग मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र में पाए जाते हैं।

(6) इण्डो-आर्यन—इस प्रजाति के अधिकांश लोग पंजाब, कश्मीर तथा राजस्थान में पाए जाते हैं।

(7) तुर्को-इरानियन—इस प्रजाति के लोग उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में पाए जाते हैं।

(ब) गुहा का वर्गीकरण—गुहा के अनुसार भारत में निम्न प्रजातियों के तत्त्व देखे जा सकते हैं—

(1) नीग्रीटो (Negrito),

(2) प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड (Proto-Australoid),

(3) मंगोलॉयड (Mongoloid) :

(i) पेली मंगोलॉयड (Palaeo Mongoloid)
  (अ) लम्बे सिर वाले (Long headed)
  (ब) चौड़े सिर वाले (Broad headed)
(ii) तिब्बती मंगोलॉयड (Tibeto-Mongoloid)

(4) भूमध्यसागरीय या मेडिटरेनियन (Mediterranean) :

(i) पेली मेडिटेरेनियम (Palaeo Mediterranean)
(ii) मेडिटरेनियन (Mediterranean)
(iii) ओरियन्टल टाइप (Oriental type)

(5) पश्चिमी चौड़े सिर वाले (Western Brachy Cephalic) :

(i) अल्पाइनॉयड (Alpinoid)

(ii) डिनारिक (Dinaric)

(iii) अरमीनॉयड (Armenoid)

(6) नार्डिक (Nordic)।

(स) हट्टन का वर्गीकरण –हट्टन ने भारतीय प्रजातियों को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया है–

(1) नीग्रीटो,

(2) प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड,

(3) मेडिटरेनियन,

(4) इण्डो-आर्यन,

(5) अल्पाइन की अरमीनॉयड शाखा तथा

(6) मंगोलॉयड।

रिजले, गुहा तथा हट्टन के वर्गीकरण से हमें पता चलता है कि भारतीय समाज में संसार की सभी प्रमुख प्रजातियों के तत्त्व पाए जाते हैं। बाहर से जितनी भी प्रजातियों के लोग भारत में आए, वे यहाँ पर बसते चले गए। विभिन्न प्रजातियों में परस्पर सहवास के कारण भारतवर्ष प्रजातियों का ऐसा मिश्रण बन गया है कि किसी भी एक प्रजाति की शुद्ध विशेषताएँ मिलनी कठिन हैं। इसके परिणामस्वरूप, भारत में प्रजातियों का निर्धारण भी सरलता से नहीं किया जा सकता। अत: भारत को 'प्रजातियों का अजायबघर' कहना पूर्णत: उचित है।

(द) हेड्डन का वर्गीकरण—हेड्डन ने भारत की जनसंख्या में निम्नलिखित प्रजातियों के तत्त्वों के पाए जाने का उल्लेख किया है—

(1) प्राग्-द्रावेडियन,

(2) द्रावेडियन,

(3) इण्डो-अल्पाइन,

(4) मंगोलॉयड तथा

(5) इण्डो-आर्यन।

धर्म की अवधारणा

सभी समाजों में धर्म शब्द केन्द्रीय स्थान रखता है। यह एक विशिष्ट अर्थ वाला शब्द (Term) है। इसका अंग्रेजी में अनुवाद 'Religion' शब्द द्वारा नहीं किया जा सकता और न ही उर्दू भाषा का 'मजहब' शब्द ही इसके आशय को स्पष्ट करने में पर्याप्त है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार धर्म सार्वभौम नियम के अर्थ में प्रयोग किया गया है। इसी के द्वारा किसी भी वस्तु अथवा घटना की वास्तविक प्रकृति का आभास होता है, जैसे सूर्य का धर्म उष्णता प्रदान करना है, अग्नि का धर्म जलाना है और पानी का धर्म शीतलता प्रदान करना है।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि धर्म केवल सभ्य समाज के साथ ही जुड़ा हुआ है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। धर्म जनजातियों में भी किसी-न-किसी रूप में पाया जाता है। वास्तविकता यह है कि सभ्य समाज के धर्म की पृष्ठभूमि जनजातीय समाज से ही निर्मित हुई है और सभ्य जीवन का धर्म जनजातीय धर्म का ही संशोधित एवं परिवर्तित रूप है। **गिलिन** एवं **गिलिन** (Gillin and Gillin) के अनुसार सामाजिक विज्ञानों में धर्म की वास्तविकता के सन्दर्भ में उसकी सत्यता या असत्यता का अध्ययन नहीं किया जाता वरन् सामाजिक जीवन के एक पहलू के रूप में धर्म का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र की मुख्य रुचि यह ज्ञात करने में है कि धर्म समाज में कैसे कार्य करता है तथा अन्य संस्थाओं से इसका क्या सम्बन्ध है। विभिन्न समाजों के तुलनात्मक अध्ययनों द्वारा धर्म की भूमिका की समीक्षा करने का प्रयास किया जाता है। धर्म, धार्मिक विश्वास, व्यवहार एवं संस्थाएँ संस्कृति के अन्य पक्षों को जिस रूप में प्रभावित करती हैं इसे ज्ञात करने में भी समाजशास्त्रियों की विशेष रुचि होती है। धर्म एक पवित्र क्षेत्र है। **इमाइल दुर्खीम** (Emile Durkheim) एवं **मैक्स वेबर** (Max Weber) द्वारा धर्म पर किए गए अध्ययन धार्मिक या ईश्वरमीमांसीय अध्ययनों से पूर्णत: भिन्न हैं। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र की रुचि धर्म का अलग क्षेत्र के रूप में अध्ययन करने में नहीं है, अपितु इसे समाज की अन्य संस्थाओं के साथ सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही देखा जाता है। साथ ही, समाजशास्त्र में धर्म के अध्ययन में अधिकतर तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार, धर्म का अर्थ बहुत व्यापक है और इसके अन्तर्गत नैतिक नियम, कानून, रीति-रिवाज, वैज्ञानिक नियम इत्यादि बहुत सी धारणाएँ आ जाती हैं। धर्म शब्द का प्रयोग मूर्त तथा अमूर्त दोनों रूपों में हुआ है। भागवत, महाभारत आदि में धर्म की देवता के रूप में कल्पना मिलती है। महाभारत में द्रौपदी चीर-हरण के समय धर्म ने ही द्रौपदी की लाज बचाई थी। सत्य, दया, तप तथा दान धर्म के चार पैर बताए जाते हैं। सतयुग में धर्म इन्हीं चारों पैरों पर खड़ा था। शनैः शनैः इसका एक-एक पैर कम होता गया। त्रेता में धर्म तीन पैरों पर, द्वापर में दो पैरों तथा कलियुग में एक पैर (दान) पर खड़ा रह गया। अमूर्त रूप में भी इसका प्रयोग अनेक रूपों में हुआ है। उदाहरणार्थ, वैदिक साहित्य में इसके लिए 'ऋत' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। ऋत को प्राकृतिक, नैतिक व सामाजिक सभी व्यवस्थाओं के मूल में माना गया है। इस अर्थ में धर्म को प्रकृति के मौलिक नियम के समानार्थ माना जा सकता है। कुछ विद्वानों का सुझाव है कि 'धर्म' का आशय 'आचरण की संहिता' या 'सभ्यता' द्वारा भी प्रकट किया जा सकता है।

धर्म का प्रयोग कानून के अर्थ में भी हुआ है। न्यायालयों द्वारा लागू राजकीय नियमों को धर्म कहा गया है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में धर्म शब्द का प्रयोग विविध अर्थों में किया गया है। धर्म के तात्पर्य को दो अर्थों में स्पष्ट किया जा सकता है—एक, इसका विचारपरक, वैचारिक या सैद्धान्तिक अर्थ है तथा दूसरा इसका सामाजिक-नैतिक या स्वाभाविक अर्थ है।

वैचारिक दृष्टि से धर्म निम्नलिखित प्रमुख सिद्धान्तों में निहित है—

(1) ईश्वर परम ब्रह्म, निराकार, अजन्मा, अमर, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, इस सृष्टि का रचयिता, भर्ता एवं संहारकर्ता है। वह करुणानिधि एवं सृष्टि के चर-अचर प्राणियों का आराध्य है।

(2) प्रत्येक मनुष्य में आत्मा ही यथार्थ है। आत्मा ही परमात्मा के आंशिक गुण रखती है क्योंकि वह भी अनश्वर है। वही शरीर के माध्यम से कर्म करती है। न तलवार उसे काट सकती है और न अग्नि उसे जला सकती है। वह मनुष्य का सूक्ष्म रूप है। वही कर्म द्वारा जनित संस्कारों की वाहक है।

(3) मनुष्य का शरीर आत्मारूपी रथी के लिए रथ के समान है और इस रूप में बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसी के द्वारा कर्म करके मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। जैसे बिजली के होते हुए भी, यदि बल्ब फ्यूज हो तो प्रकाश नहीं हो सकता, ऐसे ही अस्वस्थ या खण्डित शरीर में आत्मा कर्म नहीं कर पाती। इसलिए शरीर का रक्षण आवश्यक है। यह सच है कि आत्मा और शरीर के अपने-अपने धर्म हैं, परन्तु दोनों में साध्य और साधन का सम्बन्ध है।

(4) भारतीय समाज पवित्रता और अपवित्रता के सिद्धान्त में भी अटूट आस्था रखता है। प्रकृति की सभी मूर्त-अमूर्त शक्तियाँ उनकी प्रकृति के आधार पर तीन भागों में विभाजित की जा सकती है—**सात्विक**, **राजसिक** एवं **तामसिक**। सत्य और तम एक-दूसरे के पूर्ण विरोधी होते हैं। जहाँ प्रकाश है वहाँ अन्धकार नहीं हो सकता। इसलिए तामसिक शक्तियों का सम्पर्क अपवित्रता पैदा करता है और सात्विक शक्तियों का सम्पर्क पवित्रता पैदा करता है। पवित्रता-अपवित्रता के बीच प्रायश्चित का भी विधान है। शुद्धि संस्कारों द्वारा प्रायश्चित करने से अपवित्रता दूर की जा सकती है।

धर्म का दूसरा पक्ष सामाजिक-नैतिक या स्वाभाविक है। इस दृष्टि से धर्म व्यक्ति की विशिष्ट सामाजिक प्रस्थिति के अनुसार उसके सामाजिक दायित्वों का निर्धारण कर उसे जीवन का मार्ग दर्शाता है। हिन्दुओं के धर्मशास्त्र प्रत्येक व्यक्ति की उसके वर्ण एवं आश्रम के अनुसार दायित्वों की पूर्ति पर जोर देते हैं। इसी अर्थ में राजा का धर्म, प्रजा का धर्म, मित्र का धर्म, पिता का धर्म आदि का निर्धारण किया गया है। यहाँ यह बात विशेष ध्यान रखने योग्य है कि हिन्दू व्यवस्था 'काल-धर्म' अथवा 'आपद्-धर्म' को भी मान्यता प्रदान करती है। इसका आशय यह है कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में अथवा विपत्तियों में, जहाँ व्यक्ति को निर्धारित धर्म के अनुसार कर्म करने की स्वतन्त्रता न हो, निर्धारित आचरण में समय के अनुसार विवेकपूर्ण संशोधन किया जा सकता है। ऐसी परिस्थितियाँ प्राण संकट के समय, प्राकृतिक विपदाओं के समय और राष्ट्रीय विपत्ति के समय उत्पन्न हो सकती हैं। सामान्यतः प्रत्येक मनुष्य के लिए अपने धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करना ही उचित है।

भारत एक बहुलवादी समाज के रूप में

भारतीय समाज के सन्दर्भ में यह तथ्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि भारत एक बहुलवादी समाज है। इस समाज में प्रजातीय एवं जातीय विविधता ही नहीं अपितु धार्मिक विविधता भी है। विश्व के सभी प्रमुख धर्म भारत में विद्यमान हैं। भारतीय जनगणना में दस विभिन्न धार्मिक समूह भारत में विद्यमान बताए गए हैं—हिन्दू,

सिक्ख, जैन, बौद्ध, पारसी (जरथुस्त्र-धर्मावलम्बी), इस्लाम, ईसाई, यहूदी तथा अन्य जनजातियों के धर्म तथा गैर-जनजातियों के अन्य धर्म। वस्तुत: भारतीय समाज में सभी प्रमुख धर्मों के लोग निवास करते हैं तथा वे अपनी धार्मिक विशेषताओं को बनाए रखने का प्रयास करते रहे हैं। हिन्दू बहुसंख्यक तो हैं परन्तु वे बहुदेववादी होने के कारण बहुत से सम्प्रदायों और पन्थों में विभाजित हैं। सभी धर्मों की अपनी अलग-अलग उपासना विधि है, अलग परम्पराएँ और प्रथाएँ हैं। यह अन्तर रहन-सहन और खान-पान की व्यवस्था तथा प्रतिदिन के व्यवहार में भी स्पष्टत: परिलक्षित होता है। जो विदेशी मूल के धर्म भारत में आए वे भी आज भारतीय समाज के अभिन्न अंग बन गए हैं।

भारत में 1961 ई० से 2011 ई० की जनगणना के अनुसार विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का कुल जनसंख्या में प्रतिशत को निम्नांकित तालिका में दर्शाया गया है—

तालिका-2 :1961 ई० से 2011 ई० की जनगणना के अनुसार भारत में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का कुल जनसंख्या में प्रतिशत

धार्मिक सम्प्रदाय	कुल जनसंख्या में प्रतिशत					
	1961	**1971**	**1981**	**1991**	**2001**	**2011**
हिन्दू	83·5	82·7	82·6	82·41	80·46	79·8
इस्लाम	10·7	11·2	11·4	11·67	13·43	14·2
ईसाई	2·4	2·6	2·4	2·32	2·34	2·3
सिक्ख	1·8	1·9	2·0	1·99	1·87	1·7
बौद्ध	0·7	0·7	0·7	0·77	0·77	0·7
जैन	0·5	0·5	0·5	0·41	0·41	0·4
अन्य	0·4	0·4	0·4	0·43	0·62	0·9
कुल	**100·0**	**100·0**	**100·0**	**100·00**	**100·00**	**100·00**

स्रोत : ***भारत की जनगणना, 2001,*** ऑफिस ऑफ रजिस्ट्रार जनरल एण्ड सेन्सस कमीश्नर, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 1 and ***The Times of India***, August 26, 2015, p. 1..

हिन्दू धर्म की मान्यताएँ

हिन्दू धर्म की प्रमुख मान्यताएँ निम्नांकित हैं—

(1) ईश्वरीय सत्ता—हिन्दू धर्म की प्रमुख मान्यता ईश्वर को विश्व की परमसत्ता मानना है। सभी हिन्दुओं को ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करना चाहिए तथा किसी-न-किसी रूप में उसकी आराधना करनी चाहिए।

(2) कर्म के सिद्धान्त में आस्था—कर्म के सिद्धान्त में आस्था हिन्दू धर्म की दूसरी प्रमुख मान्यता है। कर्म के सिद्धान्त के अनुसार आत्मा अमर है तथा मनुष्य का वर्तमान जीवन उसके अनेक जन्मों की शृंखला की एक कड़ी मात्र है। कर्म का सिद्धान्त एक हिन्दू को अपने कर्त्तव्य के अनुसार काम करना सिखाता है।

(3) त्रिदेव और अवतारवाद—हिन्दू धर्म में तीन देवताओं को प्रमुख स्थान दिया गया है—**ब्रह्मा** (सृष्टि की रचना करने वाला), **विष्णु** (रक्षक) तथा **शिव** (संहारकर्ता)। राम और कृष्ण को विष्णु का ही अवतार माना जाता है। अत: हिन्दुओं में ऐसी मान्यता है कि विष्णु ने कई अवतार लिए हैं।

(4) वेद तथा मुक्ति-प्राप्ति—हिन्दू धर्म के अनुसार वेदों को पवित्र ग्रन्थ माना गया है और मुक्ति के लिए वैदिक क्रियाओं एवं अनुष्ठानों का सम्पन्न करना अनिवार्य है। मोक्ष हिन्दू धर्म का अन्तिम लक्ष्य है।

(5) वृद्ध, गो और नारी पूजा—हिन्दू धर्म और संस्कृति में वृद्ध, गो और नारी पूजा को विशेष महत्त्व दिया गया है। नारी को शक्ति का प्रतीक माना गया है। गाय को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, चारों पुरुषार्थों को देने वाली माना गया है।

हिन्दू धर्म के प्रमुख सम्प्रदाय

हिन्दू धर्म में अनेक मत-मतान्तर व संगठित धार्मिक समुदाय हैं। **डी० एस० शर्मा** (D. S. Sharma) इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "हिन्दू धर्म, जिसने अपनी बाँहों में न केवल वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदायों को वरन् शैववाद, शक्तिवाद और वैष्णववाद और जो आदिवासी धर्मों को भी समाए हुए है, एक निश्चित आस्था वाला धर्म नहीं है वरन् धर्मों का संघ है।"[2] इसके अनेक धार्मिक मतों व सम्प्रदायों का अपना लम्बा इतिहास, संस्कार तथा विधि-विधान हैं। वे सभी अपनी-अपनी निजी सामाजिक-आर्थिक विशेषताएँ भी रखते हैं। हिन्दू धर्म के कुछ प्रमुख सम्प्रदाय निम्न प्रकार हैं—

(1) वैष्णव सम्प्रदाय—यह सबसे प्रमुख सम्प्रदाय है जिसमें शंकराचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्य, निम्बार्क, कबीर, राधास्वामी जैसे आचार्यों और भक्तों द्वारा चलाए गए मत-सम्प्रदाय हैं। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति के तीन मार्ग हैं—**कर्म-मार्ग** (कर्मकाण्ड और यज्ञ इत्यादि ठीक प्रकार से करके), **ज्ञान मार्ग** (ज्ञान प्राप्ति ही मोक्ष का साधन है) तथा **भक्ति-मार्ग** (किसी एक देवता-विष्णु, कृष्ण या राम की भक्ति के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति)। यह सम्प्रदाय विष्णु के दशावतारों को स्वीकार करता है—मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, बुद्ध तथा मल्लिकार्जुन। वैष्णव सम्प्रदाय के समर्थक श्रीकृष्ण को पूर्णावतार मानते हैं।

(2) शैव सम्प्रदाय—हिन्दुओं का दूसरा प्रमुख सम्प्रदाय शैव सम्प्रदाय है जिसमें बहुत प्राचीन परम्परा से रुद्र या शिव को परमब्रह्म मानकर उसकी भक्ति में जीवन गुजारने वाले अनेक सम्प्रदाय हैं। इसमें तिरसठ शैव-सन्तों के विचार गिनाए जाते हैं।

(3) शक्ति सम्प्रदाय—तीसरा प्रमुख सम्प्रदाय शक्ति पूजा करने वालों का है जिसमें दो मत प्रमुख हैं—माध्यमिका तथा योगाचार। इसी की एक मिश्रित शाखा वाम-मार्ग या तन्त्र-मार्ग है जो पंच मकारों—मांस, मदिरा, मैथुन, मीन तथा मुद्रा—द्वारा अपनी उपासना के लिए प्रसिद्ध हैं। शाक्त सम्प्रदाय वाले भगवती के अनेक रूपों (जैसे महालक्ष्मी, महासरस्वती, महाकाली, गौरी, काली, तारा, चामुण्डा, सिंहवाहिनी, ललिता, भैरवी, धूमावती, मातंगी आदि) की महाशक्ति के रूप में विभिन्न प्रकार से उपासना करते हैं।

(4) हिन्दू पुनर्जागरण से सम्बन्धित सम्प्रदाय—आधुनिक युग में हिन्दू पुनर्जागरण के दौरान उपजे कुछ मत-सम्प्रदाय भी हैं; जैसे ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन तथा श्री अरविन्द का सम्पूर्ण योग आदि। यह परम्परा अभी भी टूटी नहीं है। पिछले कुछ दशकों में हम साईं बाबा, आचार्य रजनीश और आनन्द मूर्ति आदि को देखते हैं जो हिन्दू धर्म की प्रमुख धारा में अपने चिन्तन और तपस्या की पुष्पमालाएँ अर्पित कर रहे हैं। यही नहीं, विदेशी भी काफी अधिक संख्या में इस ओर आकर्षित हैं और अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण चेतना समाज आन्दोलन, जिसे हरे कृष्ण आन्दोलन भी कहते हैं, एक नए रंग में हिन्दू सम्प्रदाय के रूप में उभर रहा है।

भारत में अल्पसंख्यक

अल्पसंख्यक का अर्थ किसी विशेष समुदाय या सम्प्रदाय का संख्यात्मक विशिष्टता की दृष्टि से कम होना है। समाजशास्त्र में अल्पसंख्यक शब्द का प्रयोग अधिक व्यापक रूप में किया जाता है क्योंकि इसमें सामान्यत: असुविधा या हानि का कुछ भाग भी निहित है। इस शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत छोटे लेकिन साथ ही सुविधा वंचित समूह के रूप में किया जाता है। अल्पसंख्यक शब्द का समाजशास्त्रीय भाव यह भी है कि अल्पसंख्यक वर्ग के सदस्य एक सामूहिकता का निर्माण करते हैं अर्थात् उनमें अपने समूह के प्रति एकात्मकता, एकजुटता और उससे सम्बन्धित होने का प्रबल भाव होता है। यह भाव हानि अथवा असुविधा से जुड़ा होता है क्योंकि पूर्वाग्रह और भेदभाव का शिकार होने का अनुभव आमतौर पर अपने समूह के प्रति निष्ठा और दिलचस्पी की भावनाओं को बढ़ावा देता है। जो समूह सांख्यिकीय दृष्टि से अल्पसंख्यक होते हुए भी किसी सामूहिकता का निर्माण नहीं करते, उन्हें समाजशास्त्र में अल्पसंख्यक नहीं कहा जाता है। उदाहरणार्थ, बाएँ हाथ से खेलने या लिखने वाले लोग अथवा 29 फरवरी को जन्मे लोग संख्या में कम तो हो सकते हैं, परन्तु उन्हें समाजशास्त्र में अल्पसंख्यक नहीं कहा जाता है।

भारतीय समाज में 'बहुसंख्यक' एवं 'अल्पसंख्यक' शब्दों का प्रयोग सामान्यतया धार्मिक दृष्टि से अधिक एवं अल्प जनसंख्या वाले सम्प्रदायों के लोगों के लिए ही किया जाता है। उदाहरणार्थ, हिन्दुओं को

बहुसंख्यक माना जाता है तो सिक्ख, जैन, बौद्ध, पारसी (जरथुस्त्र-धर्मावलम्बी), इस्लाम, ईसाई, यहूदी आदि धर्मों के अनुयायियों को अल्पसंख्यक माना जाता है। भारत की कुल जनसंख्या में हिन्दुओं का प्रतिशत 80·5 है, जबकि मुसलमानों का 13·4 प्रतिशत। कई बार अल्पसंख्यक शब्द का प्रयोग संजातीय दृष्टि से भी किया जाता है। भारत में संजातीय मिश्रण इतना अधिक हुआ है कि इसके आधार पर अल्पसंख्यकों की पहचान कर पाना कठिन कार्य है। क्षेत्रीय समूहों में भी कौन-सा समूह बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक है, वह इस बात पर निर्भर करता है कि उस क्षेत्र-विशेष में जनसंख्या का धार्मिक आधार पर वितरण किस प्रकार का है।

बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक शब्द का समाजशास्त्रीय भाव यह भी है कि दोनों ही वर्गों के सदस्य एक सामूहिकता का निर्माण करते हैं अर्थात् उनमें अपने समूह के प्रति एकात्मकता, एकजुटता और उससे सम्बन्धित होने का प्रबल भाव होता है। अल्पसंख्यकों में यह भाव हानि अथवा असुविधा से जुड़ा होता है क्योंकि पूर्वाग्रह और भेदभाव का शिकार होने का अनुभव आमतौर अपने समूह के प्रति निष्ठा और दिलचस्पी की भावनाओं को बढ़ावा देता है। किसी प्रदेश की जनसंख्या में किसी धर्म के अनुयायियों की कुल संख्या के आधार पर कोई सम्प्रदाय अल्पसंख्यक अथवा बहुसंख्यक हो सकता है। उदाहरणार्थ, पूरे भारत में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं परन्तु जम्मू-कश्मीर में वे बहुसख्यक हैं। इसी भाँति, पूरे भारत में सिक्ख अल्पसंख्यक हैं परन्तु पंजाब में वे बहुसंख्यक हैं।

भारत में निम्नलिखित अल्पसंख्यक सम्प्रदाय पाए जाते हैं—

(1) मुसलमान,
(2) ईसाई,
(3) सिक्ख,
(4) बौद्ध,
(5) जैन,
(6) पारसी
(7) यहूदी।

भारतीय समाज में अल्पसंख्यकों के लक्षण

समाजशास्त्रीय दृष्टि से भारत में अल्पसंख्यक समूहों के निम्नलिखित प्रमुख लक्षण हैं—

(1) मुसलमानों में नगर में रहने वालों का अनुपात ज्यादा है, इसी प्रकार जैन धर्म भी नगरीय पृष्ठभूमि वाला धर्म दिखाई देता है। सिक्ख जनसंख्या ग्रामों और नगरों दोनों में है और यही बात ईसाइयों और बौद्धों पर भी लागू हो रही है।

(2) प्रजनन दर की दृष्टि से सबसे ऊँची प्रजनन दर मुसलमानों में और फिर क्रमश: जैन, ईसाई, हिन्दू, सिक्ख तथा बौद्ध में पाई जाती है। ईसाइयों में सबसे कम वृद्धि दर पाई जाती है। 1991 से 2001 के दशक में मुसलमानों में जनसंख्या वृद्धि दर 36·0 प्रतिशत, जैनियों में 26·0 प्रतिशत, ईसाइयों में 22·6 प्रतिशत, हिन्दुओं में 20·3 प्रतिशत तथा सिक्खों एवं बौद्धों में 18·2 प्रतिशत रही।

(3) धर्मों का जनांकिकीय अध्ययन लिंग अनुपात की दृष्टि से भी किया जाता है। वैसे तो ईसाइयों को छोड़कर अन्य सभी धार्मिक सम्प्रदायों की जनसंख्या में स्त्री अनुपात पुरुषों की अपेक्षा कम है। सिक्खों में यह अनुपात सबसे कम है। 2011 ई० की जनगणनानुसार भारत में लिंगानुपात 1000 पुरुषों पर 940 स्त्रियों का है। 2001 ई० की जनगणनानुसार ईसाइयों में लिंगानुपात 1000 पुरुषों पर 1009 स्त्रियाँ था, जबकि सिक्खों में यह अनुपात 1000 पुरुषों पर 893 स्त्रियाँ ही था। मुसलमानों में यह अनुपात 1000 : 936 था। विभिन्न धर्मों में लिंगानुपात के सम्बन्ध में 2001 ई० की जनगणना से सम्बन्धित आँकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं।

(4) भारत में सभी प्रमुख अल्पसंख्यक अपनी धार्मिक विशेषताओं को बनाए रखने का प्रयास करते रहे हैं। सभी धर्मों की अपनी अलग-अलग उपासना विधि है, अलग परम्पराएँ और प्रथाएँ हैं। यह अन्तर रहन-सहन और खान-पान की व्यवस्था तथा प्रतिदिन के व्यवहार में भी स्पष्टत: परिलक्षित होता है। जो विदेशी मूल के धर्म भारत में आए, वे भी आज भारतीय समाज के अभिन्न अंग बन गए हैं।

(5) भारतीय समाज की धार्मिक विविधता तथा बहुलवाद समय-समय पर संघर्ष की स्थिति भी पैदा करते रहे हैं। आज भारत में धार्मिक आधार पर साम्प्रदायिकता एक प्रमुख समस्या बनी हुई है तथा साम्प्रदायिक दंगे, कट्टरवादी और पृथकतावादी प्रवृत्तियाँ भारतीय समाज की जड़ों को हिला रही हैं।

(6) स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् भारत को एक लौकिक राज्य के रूप में स्वीकार किया गया। भारतीय संविधान में यह स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि सभी धर्मों के लोग एक समान हैं तथा उन्हें समान अधिकार प्राप्त हैं। धर्म, जाति, लिंग, प्रजाति के आधार पर किसी नागरिक से किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा।

(7) व्यावहारिक रूप में आज भी हमारे देश में सरकार अनेक धार्मिक मामलों तथा झगड़ों से अपने आप को अलग नहीं रख पा रही है। कुछ धार्मिक सम्प्रदायों के नेताओं ने तो यह स्पष्ट घोषणा तक कर दी है कि उनके धर्म तो सर्वग्राही धर्म हैं और इस नाते वे सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक सभी पक्षों को अपने में समेटे हुए हैं। वे यह तर्क देते हैं कि उनमें राजनीतिक तथा अन्य बातों को अलग–अलग करना उनके धर्म की अस्मिता को चोट पहुँचाना है।

(8) **के० एल० शर्मा** के अनुसार पारसियों, जैनियों, यहूदियों एवं ईसाइयों में साक्षरता दर अधिक है। ईसाइयों के अपवाद के साथ ये अल्पसंख्यक सम्प्रदाय व्यापार में अधिक संलग्न हैं। पारसियों, यहूदियों तथा जैनियों को व्यापार में काफी अग्रणी माना जाता है। ●